अध्याय 1

भारतीय समाज : एक परिचय

एक महत्त्वपूर्ण अर्थ में समाजशास्त्र उन सभी विषयों से अलग है जिन्हें आपने पढ़ा हो। यह एक ऐसा विषय है जिसमें कोई भी शून्य से शुरुआत नहीं करता है। सभी को समाज के बारे में पहले से ही कुछ न कुछ पता होता है। अन्य विषयों को हम सिखाए जाने के कारण ही सीख पाते हैं; इनका ज्ञान हमें औपचारिक या अनौपचारिक तरह से विद्यालय, घर या अन्य संदर्भ में सिखाया-पढ़ाया जाता है। परन्तु समाज के बारे में हमारा बहुत सारा ज्ञान सुस्पष्ट पढ़ाई के बगैर प्राप्त किया हुआ होता है। समाज के बारे में ज्ञान 'स्वाभाविक' या 'अपने आप' प्राप्त किया हुआ ही प्रतीत होता है क्योंकि यह हमारे बड़े होने की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अभिन्न हिस्सा है। पहली कक्षा में प्रवेश कर रहे किसी बच्चे से हम यह अपेक्षा नहीं करते की वह इतिहास, भूगोल, मनोविज्ञान या अर्थशास्त्र जैसे विषयों के बारे में पहले से ही कुछ जानता हो। लेकिन एक छ: वर्षीय बच्चा भी समाज एवं सामाजिक संबंधों के बारे में कुछ न कुछ ज़रूर जानता है। ज़ाहिर है कि अठारह साल के युवा वयस्क होने के नाते आप अपने समाज के बारे में बहुत कुछ जानते हैं-इसलिए नहीं कि आपने समाज का अध्ययन किया है, बल्कि महज इसीलिए कि आप इस समाज में रहते हैं और इसमें पले-बढ़े हैं।

इस प्रकार का "पहले से ही" या "अपने आप" प्राप्त किया गया सहज-ज्ञान या सहज बोध समाजशास्त्र के लिए बाधक भी है और सहायक भी। सहायक इसलिए कि आम तौर पर छात्र समाजशास्त्र से डरते नहीं-उन्हें लगता है कि यह विषय आसान होगा क्योंकि इसकी विषयवस्तु के बारे में उन्हें पहले से बहुत कुछ पता है। लेकिन सहजबोध (या common sense) द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान समाजशास्त्र के लिए एक बाधा या समस्या भी है। वह इसलिए कि समाजशास्त्र समाज के व्यवस्थित व वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित है। इस प्रकार की अध्ययन प्रक्रिया को सीखने-समझने के लिए अनिवार्य है कि हम अपने सहज बोध को 'भूलने' या 'मिटा देने' की भरपूर कोशिश करें। किसी बुने हुए स्वेटर या अन्य वस्त्र को नये सिरे से बुनने के लिए पहले की बुनाई को उधेड़ना पड़ता है। ठीक उसी तरह समाजशास्त्र को सीखने से पहले हमें समाज के बारे में अपनी पूर्व धारणाओं को उधेड़ना पड़ता है।

वास्तव में, समाजशास्त्र को सीखने के प्रारंभिक चरण में मुख्यत: यह भूलने की प्रक्रियाएँ ही शमिल हैं। यह आवश्यक है, क्योंकि समाज के बारे में हमारा पहले से प्राप्त ज्ञान – हमारा सामान्य बोध – एक विशिष्ट दृष्टिकोण से प्राप्त किया हुआ होता है। यह उस सामाजिक समूह और सामाजिक वातावरण का दृष्टिकोण होता है जिसमें हम समाजीकृत होते हैं। हमारे सामाजिक संदर्भ समाज एवं सामाजिक संबंधों के बारे में हमारे मतों, आस्थाओं एवं अपेक्षाओं को आकार देते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि यह आस्थाएँ गलत ही हैं, परंतु यह गलत हो भी सकती हैं। कठिनाई यह है कि वे अक्सर अपूर्ण (संपूर्ण का विलोम) एवं पूर्वाग्रहपूर्ण (निष्पक्ष का विलोम) होती हैं। अत: हमारा 'बिना सीखा गया' ज्ञान या सहज सामान्य बोध अक्सर हमें सामाजिक वास्तविकता का केवल एक हिस्सा ही दिखलाता है। इसके अतिरिक्त यह सामान्यत: हमारे अपने सामाजिक समूह के हितों एवं मतों की तरफ झुका हुआ होता है।

समाजशास्त्र इस समस्या का समाधान एक ऐसे दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत नहीं करता जिसके द्वारा संपूर्ण वास्तविकता को पूरी तरह निष्पक्ष तरीके से देखा जा सके। वास्तव में, समाजशास्त्रियों का विश्वास है कि ऐसा आदर्श परिप्रेक्ष्य या 'प्रेक्षण स्थान' होता ही नहीं है। हम हमेशा किसी निर्धारित स्थान पर खड़े होकर देख सकते हैं; और ऐसे प्रत्येक 'स्थान' से विश्व को केवल एक आंशिक व 'पक्षपाती' दृष्टि से ही देखा जा सकता है। समाजशास्त्र हमें यह सीखने का निमंत्रण देता है कि संसार को केवल हमारे अपने दृष्टिकोण के अलावा हम से अलग लोगों के दृष्टिकोणों से कैसे देखा जाए। अलग-अलग अवस्थितियों से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के पक्षपात व अधूरेपन से परिचित होकर हम एक महत्त्वपूर्ण सबक सीख सकते

हैं। मानव समाज के संदर्भ में निष्पक्ष "वैज्ञानिक सत्य" की ओर बढ़ना हो तो सबसे पहले हमें यह स्वीकार करना होगा कि सत्य एक नहीं अनेक हैं और प्रत्येक सत्य अपने आप में अपूर्ण है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में सत्य की बहुलता एक समस्या है तो इसका समाधान है तुलना–नाना प्रकार की अवस्थितियों से उपजे अलग–अलग नज़रियों को आमने–सामने करना। दूसरे शब्दों में कहें तो समाजशास्त्र की स्वाभाविक मुद्रा तुलनात्मक होती है। समाजशास्त्र हमें पूर्वाग्रह–मुक्त करने का दावा तो नहीं करता, बल्कि हममें अपने व औरों के पूर्वाग्रहों को पहचानने की क्षमता विकसित करने का वादा करता है।

इससे भी मज़ेदार बात यह है कि समाजशास्त्र आपको यह दिखा सकता है कि दूसरे आपको किस तरह देखते हैं; यूँ कहें, आपको यह सिखा सकता है कि आप स्वयं को 'बाहर से' कैसे देख सकते हैं। इसे 'स्ववाचक' या कभी–कभी **आत्मवाचक** कहा जाता है। यह अपने बारे में सोचने, अपनी दृष्टि को लगातार अपनी तरफ़ घुमाने (जो कि अक्सर बाहर की तरफ़ होती है) की क्षमता है। परंतु यह स्वनिरीक्षण आलोचनात्मक होना चाहिए-इसमें समीक्षा अधिक और आत्म–मुग्धता कम होनी चाहिए।

सबसे सरल स्तर पर कहा जा सकता है कि भारतीय समाज और इसकी संरचना की समझ आपको एक सामाजिक नक्शा प्रदान करती है जिसमें आप अपने ठौर–ठिकाने, स्थान का पता लगा सकते हैं। भौगोलिक नक्शे की तरह, स्वयं का सामाजिक नक्शे में पता लगाना इस अर्थ में उपयोगी हो सकता है कि इससे आपको यह जानकारी मिलती है कि समाज में दूसरों से संबंध में आपकी स्थिति क्या है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि आप अरुणाचल प्रदेश में रहते हैं। अगर आप भारत के भौगोलिक नक्शे को देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि आपका राज्य भारत के उत्तर–पूर्वी कोने में स्थित है। आपको यह भी पता चलेगा कि आपका राज्य अनेक बड़े राज्यों जैसे, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र या राजस्थान की तुलना में छोटा है, परंतु यह अनेक अन्य राज्यों जैसे, मणिपुर, गोवा, हरियाणा या पंजाब से बड़ा है। यदि आप प्राकृतिक विशेषताओं के नक्शे को देखेंगे तो आपको यह जानकारी मिल सकती है कि भारत के अन्य क्षेत्रों एवं राज्यों की तुलना में अरुणाचल का भूभाग कैसा (पर्वतीय, वनों से भरपूर) है, यहाँ कौन से प्राकृतिक संसाधन भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं एवं इसी तरह की अन्य बातों के बारे में आप जान पाएँगे।

एक तुलनात्मक सामाजिक नक्शा आपको समाज में आपके निर्धारित स्थान के बारे में बता सकता है। उदाहरण के लिए, सत्रह या अठारह वर्ष की आयु में आप उस सामाजिक समूह के सदस्य हैं जिसे "युवा पीढ़ी" कहा जाता है। भारत की लगभग 40% जनसंख्या आपकी या आपसे छोटे उम्र के लोगों की हैं। आप किसी विशेष क्षेत्रीय या भाषायी समुदाय (जैसे गुजरात से गुजराती भाषी या आंध्र प्रदेश से तेलुगु भाषी) से संबंधित होंगे। आपके माता–पिता के व्यवसाय एवं आपके परिवार की आय के मुताबिक आप एक आर्थिक वर्ग (जैसे, निम्न मध्यम वर्ग या उच्च वर्ग) के सदस्य भी अवश्य होंगे। आप एक विशेष धार्मिक समुदाय, एक जाति या जनजाति, या ऐसे ही किसी अन्य सामाजिक समूह के सदस्य भी हो सकते हैं। ऐसी प्रत्येक पहचान सामाजिक नक्शे में एवं सामाजिक संबंधों के ताने–बाने में आपका स्थान निर्धारित करती है। समाजशास्त्र आपको समाज में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के समूहों, उनके आपसी संबंधों एवं आपके अपने जीवन में उनके महत्त्व के बारे में बतलाता है।

परंतु समाजशास्त्र केवल आपका या अन्य लोगों का स्थान निर्धारित करने में मदद करने एवं विभिन्न सामाजिक समूहों के स्थानों का वर्णन करने के अलावा और भी बहुत कुछ सिखा सकता है। जैसाकि एक प्रसिद्ध अमेरिकी समाजशास्त्री सी. राईट मिल्स ने लिखा है, समाजशास्त्र आपकी "व्यक्तिगत परेशानियों" एवं "सामाजिक मुद्दों" के बीच की कड़ियों एवं संबंधों को उजागर करने में मदद कर सकता है। व्यक्तिगत परेशानियों से मिल्स का तात्पर्य है, विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत चिंताएँ, समस्याएँ या सरोकार जो सबके

होते हैं। उदाहरण के लिए, हो सकता है आपके परिवार के बड़े सदस्य या आपके भाई, बहन या दोस्त आपके साथ जो व्यवहार करते हैं, उससे आप खुश नहीं हैं। शायद आप अपने भविष्य के बारे में या आपको किस तरह की नौकरी मिलेगी इस बारे में चिंतित हों। आपकी व्यक्तिगत सामाजिक पहचान के अन्य पक्ष भी गर्व, तनाव, आत्मविश्वास या विभिन्न तरीकों की उलझन के स्रोत हो सकते हैं। पर यह सभी लक्षण एक ही व्यक्ति विशेष से जुड़े हैं और इनका अर्थ इस व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य तक ही सीमित है। दूसरी तरफ़, एक सामाजिक मुद्दा बड़े समूहों से संबंधित होता है न कि उन एकल व्यक्तियों से जो उन समूहों के सदस्य हैं।

अतः बुजुर्ग एवं युवा पीढ़ियों के बीच का 'पीढ़ी अंतराल' या मनमुटाव एक सामाजिक प्रघटना है जो अनेक समाजों एवं समयकालों में सामान्य रूप से पाया जाता है। बेरोज़गारी या परिवर्तनशील व्यावसायिक संरचना का प्रभाव भी एक अन्य सामाजिक मुद्दा है, जो विभिन्न प्रकार के लाखों लोगों से संबंधित हैं। उदाहरण के लिए, सूचना तकनीकी से संबंधित व्यवसायों में अचानक तेज़ी आना एवं साथ ही साथ खेतिहर
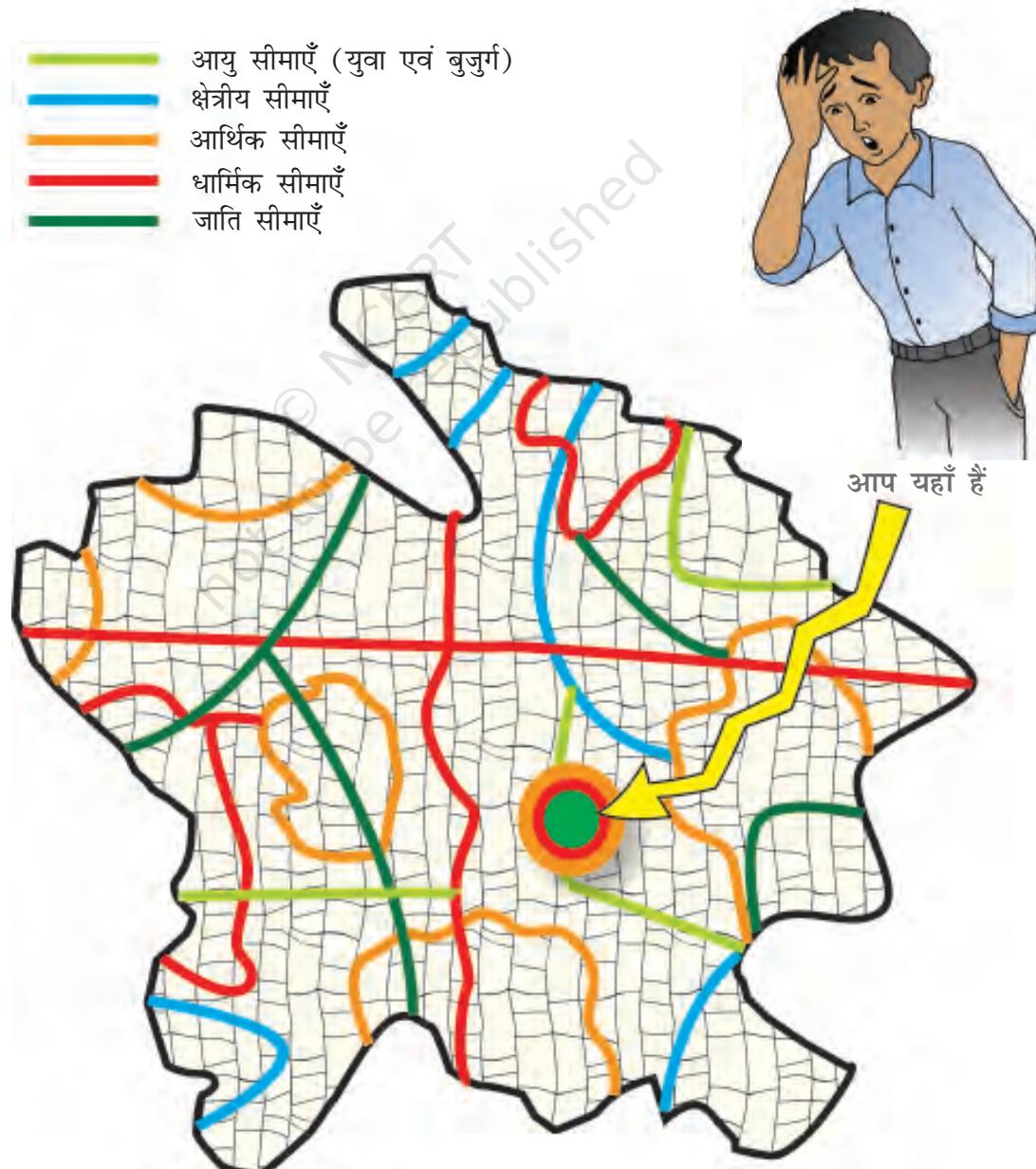
श्रम की माँग में कमी होना इसमें शामिल हैं। सांप्रदायिकता (एक धार्मिक समुदाय का दूसरे धार्मिक समुदाय के प्रति विद्वेष) या जातिवाद (कुछ जातियों द्वारा कुछ अन्य जातियों का बहिष्कार या उत्पीड़न) जैसी प्रघटनाएँ समाज में व्यापक रूप से पाई जाने वाली समस्याएँ हैं। विभिन्न व्यक्तियों की इसमें विभिन्न प्रकार की भूमिकाएँ हो सकती हैं जो कि उनकी सामाजिक स्थिति पर निर्भर करती है। अत: कथित उच्च जाति का व्यक्ति जो कथित निम्न जाति में पैदा हुए व्यक्ति को अपने से नीचा मानता है जातिवाद की प्रक्रिया में एक कर्ता की हैसियत में शामिल है, जबकि कथित निम्न जाति का व्यक्ति भी इसमें शामिल है, परंतु एक पीड़ित की हैसियत से। इसी तरह पुरुष एवं स्त्रियाँ दोनों अलग-अलग तरह से लैंगिक असमानताओं से प्रभावित होते हैं।

इस तरह के सामाजिक नक्शे का एक स्वरूप हमें बचपन में ही समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त होता है। वह सब तौर-तरीके जिसके द्वारा हमें अपने आसपास की दुनिया को समझना सिखाया जाता है, वह सब इस नक्शे को बनाने में शामिल हैं। यह सहज बोध का नक्शा है। परंतु जैसाकि पहले बताया जा चुका है इस तरह के नक्शे-सहज बोध के आंशिक व पक्षपातपूर्ण होने के कारण-भ्रमित कर सकते हैं या यह विकृत भी हो सकते हैं। हमारे सामान्य बोध के नक्शे के अलावा हमारे पास कोई अन्य तैयार नक्शा नहीं होता है क्योंकि हमारा सामाजीकरण बहुत सारे या सभी सामाजिक समूहों में नहीं केवल एक ही समाज में समाजीकृत होता हैं। अगर हम अन्य प्रकार के नक्शे चाहते हैं तो हमें उन्हें बनाना सीखना होगा। एक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य आपको विभिन्न प्रकार के सामाजिक नक्शों को बनाना सिखाता है।

1.1 एक परिचय का परिचय...

इस पाठ्यपुस्तक का उद्देश्य है भारतीय समाज से आपका परिचय कराना-लेकिन सहज बोध के नज़रिए से नहीं वरन् समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से। इस परिचय के परिचय में क्या कहा जा सकता है? शायद यहाँ उन व्यापक सामाजिक प्रक्रियाओं की तरफ़ संकेत करना उचित होगा जो भारतीय समाज को आकार दे रही हैं, जिनके बारे में आप आगे के पृष्ठों में विस्तार से पढ़ेंगे।

मोटे तौर पर कहा जाए तो औपनिवेशिक दौर में ही एक विशिष्ट भारतीय चेतना ने जन्म लिया। औपनिवेशिक शासन ने पहली बार पूरे भारत को एकीकृत किया एवं पूँजीवादी आर्थिक परिवर्तन एवं आधुनिकीकरण की ताकतवर प्रक्रियाओं से भारत का परिचय कराया। एक तरह से जो परिवर्तन लाए गए उन्हें पलटा नहीं जा सकता था-समाज वैसा कभी नहीं हो सकता जैसा पहले था। औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भारत की आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकीकरण की उपलब्धि भारी कीमत चुकाकर प्राप्त हुई। औपनिवेशिक शोषण एवं प्रभुत्व द्वारा दिए गए अनेक प्रकार के घावों के निशान भारतीय समाज पर आज भी मौजूद हैं। परंतु उस युग का एक विरोधाभासी सच यह भी है कि **उपनिवेशवाद** ने ही अपने शत्रु **राष्ट्रवाद** को जन्म दिया।

ऐतिहासिक तौर पर, भारतीय राष्ट्रवाद ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अंतर्गत आकार लिया। औपनिवेशिक प्रभुत्व के साझे अनुभवों ने समुदाय के विभिन्न भागों को एकीकृत करने एवं बल प्रदान करने में मदद की। पाश्चात्य शैली की शिक्षा की बदौलत उभरते मध्य वर्ग ने उपनिवेशवाद को उसकी अपनी मान्यताओं के आधार पर ही चुनौती दी। हमारे इतिहास की विडम्बना है कि उपनिवेशवाद एवं पाश्चात्य शिक्षा ने ही परंपरा की पुन:खोज को प्रोत्साहन प्रदान किया। इससे कई तरह की सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ विकसित हुई जिससे राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तरों पर समुदाय के नवोदित रूप सुदृढ़ हुए।

उपनिवेशवाद ने नए वर्गों एवं समुदायों को जन्म दिया जिन्होंने बाद के इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। नगरीय मध्य वर्ग राष्ट्रवाद के प्रमुख वाहक थे एवं उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के अभियान की अगुआई की। औपनिवेशिक हस्तक्षेपों ने भी धार्मिक एवं जाति आधारित समुदायों को निश्चित रूप दिया। इन्होंने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। समकालीन भारतीय समाज का भावी इतिहास जिन जटिल प्रक्रियाओं द्वारा विकसित हुआ उनके बारे में आप आने वाले अध्यायों में पढ़ेंगे।

1.2 पाठ्यपुस्तक का पूर्वदर्शन

समाजशास्त्र की दो पाठ्यपुस्तकों में से इस पहली पाठ्यपुस्तक में आपका परिचय भारतीय समाज की आधारभूत संरचना से कराया जाएगा। (द्वितीय पाठ्यपुस्तक भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास की विशिष्टताओं पर केंद्रित होगी)।

हम भारतीय जनसंख्या की जनसांख्यिकीय संरचना (अध्याय 2) पर विचार-विमर्श से शुरुआत करते हैं। जैसाकि आप जानते हैं, आज भारत विश्व का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है एवं अनुमानित तौर पर कुछ दशकों में चीन को पीछे छोड़कर विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा। वह कौन से तरीके हैं जिनके द्वारा समाजशास्त्री एवं जनसांख्यिकीविद् जनसंख्या का अध्ययन करते हैं? जनसंख्या के कौन से पक्ष सामाजिक तौर पर महत्त्वपूर्ण हैं एवं भारतीय परिदृश्य में इन मोर्चों पर क्या हो रहा है? क्या हमारी जनसंख्या विकास में एक बाधा है या इसे विकास में किसी तरह की मदद के रूप में भी देखा जा सकता है? ये कुछ सवाल हैं जिनका उत्तर यह अध्ययन ढूँढ़ने का प्रयास करता है।

अध्याय 3 में हम जाति, जनजाति एवं परिवार की संस्थाओं के रूप में भारतीय समाज के आधारभूत रचना खंडों का पुनःअध्ययन करेंगे। भारतीय उपमहाद्वीप के एक विशिष्ट लक्षण के रूप में जाति ने हमेशा अनेक विद्वानों को अपनी तरफ़ आकर्षित किया है। विभिन्न शताब्दियों से यह संस्था किस तरह से परिवर्तनशील रही है एवं आज वास्तव में जाति का अर्थ क्या है? कौन से संदर्भ के तहत 'जनजाति' की संकल्पना भारत में आई थी? जनजातियाँ किस तरह के समुदाय माने जाते हैं एवं उन्हें इस तरह से परिभाषित करने में हम दाँव पर क्या लगा रहे हैं? जनजातीय समुदाय, समकालीन भारत में स्वयं को किस तरह परिभाषित करते हैं? अंततः एक संस्था के रूप में परिवार भी इस समय के त्वरित एवं गहन सामाजिक परिवर्तन के भारी दबाव का विषय रहा है। भारत में पाए जाने वाले परिवार के विविध स्वरूपों में हम क्या परिवर्तन देखते हैं? इस तरह के प्रश्न पूछकर अध्याय 3 भारतीय समाज के अन्य पक्षों जैसे, जाति, जनजाति एवं परिवार को देखने का आधार तैयार करता है।

अध्याय 4 एक शक्तिशाली संस्था के रूप में बाज़ार के सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों को खोजता है, जो कि संपूर्ण विश्व इतिहास में परिवर्तन का एक वाहक रहा है। यह मानते हुए कि सबसे गहरा प्रभाव

डालने वाले एवं त्वरित आर्थिक परिवर्तन सबसे पहले उपनिवेशवाद द्वारा एवं बाद में विकासशील नीतियों द्वारा लाए गए, यह अध्याय यह जानने का प्रयास करता है कि भारत में विभिन्न प्रकारों के बाज़ारों का उदय किस प्रकार हुआ एवं इसने किन अन्य नयी प्रक्रियाओं को जन्म दिया।

हमारे समाज की विशेषताओं में जो सबसे बड़ी चिंता का विषय रहा है वह है, इसकी असीमित विषमता एवं अपवर्जन (बहिष्कार) उत्पन्न करने की क्षमता। अध्याय 5 इस महत्त्वपूर्ण विषय को समर्पित है। अध्याय 5 विषमता एवं बहिष्कार को जाति, जनजाति, लिंग एवं 'अन्यथा सक्षम' लोगों के संदर्भ में देखता है। विभाजन एवं अन्याय के एक साधन के रूप में कुख्यात जाति व्यवस्था को मिटाने या इसमें सुधार लाने के संयोजित प्रयास उत्पीड़ित जातियों एवं राज्य द्वारा किए जाते रहे हैं। वह कौन सी प्रत्यक्ष समस्याएँ एवं मुद्दे हैं जो इस प्रयास के सामने आए? हमारे हाल ही के अतीत में हुए आंदोलन जाति बहिष्कार को रोकने में कितने सफल रहे हैं? जनजातीय आंदोलनों की विशेष समस्याएँ क्या हैं? आज जनजातियाँ किस संदर्भ में स्वयं की पहचान को पुन:स्थापित करना चाहती हैं? इन समान प्रश्नों को लिंग संबंधों अथवा अन्यथा सक्षम या 'असक्षम' लोगों के संदर्भ में भी जानने का प्रयास किया गया है। हमारा समाज किस सीमा तक अन्यथा सक्षम लोगों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदी है। जिन सामाजिक संस्थाओं ने महिलाओं का शोषण किया उन पर महिला आंदोलनों का कितना प्रभाव पड़ा?

अध्याय 6 भारतीय समाज की असीम विविधता से उत्पन्न कठिन चुनौतियों के बारे में बात करता है। यह अध्याय हमें हमारे सामान्य, सुविधाजनक चिंतन के तरीकों से बाहर आने को आमंत्रित करता है। भारत के विविधता में एकता के सुपरिचित नारों का एक जटिल पहलू भी है। सभी असफलताओं एवं कमियों के बावजूद भारत ने इस मोर्चे पर कोई बुरा प्रदर्शन नहीं किया है। हमारी ताकत और कमजोरियाँ क्या रही हैं? युवा वयस्क सामुदायिक संघर्ष, क्षेत्रीय या भाषायी उग्रराष्ट्रीयता एवं जातिवाद को हटाये बगैर या उनसे पूर्ण रूप से प्रभावित हुए बगैर उनका सामना कैसे करेंगे? एक राष्ट्र के रूप में हमारे सामूहिक भविष्य के लिए यह क्यों महत्त्वपूर्ण है कि भारत में पाया जाने वाला प्रत्येक अल्पसंख्यक यह महसूस न करे कि वह असुरक्षित है या खतरे में है?

अंतत: अध्याय 7 में आपको एवं आपके शिक्षकों को आपके पाठ्यक्रम के प्रयोगात्मक घटकों के बारे में चिंतन के लिए कुछ सुझाव दिए गए हैं। जैसाकि आप जानेंगे यह काफ़ी रुचिकर एवं मजेदार हो सकता है।